सिनेमा, नाटक और जनसंस्कृति

वेदप्रकाश भारती

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा.

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.18771541

ABSTRACT:

दादा साहब फालके ने भारतीय सिनेमा की नींव रखी जो बाद के दशकों में बॉलीवुड की दृश्य-शैली ने व्यापक जन-संस्कृति पर असर डाला। समकालीन सिनेमा कभी-कभी प्रतिरोध और सामाजिक विमर्श का स्थल भी रहा है। डिजिटल युग में यह और जटिल हुआ है। दादा साहब फालके ने राजा हरिश्चन्द्र (1913) फिल्म को बनाया और इन्हें ही 'भारतीय सिनेमा का जनक' कहा जाता है। उनकी फिल्में और दृश्य-कथा ने फिल्म को एक लोकप्रिय जन-माध्यम के रूप में स्थापित किया। पारसी थिएटर, लोक-नाट्य और शास्त्रीय नाट्य से प्रेरित कथा-शैलियाँ, गीत-संगीत और भावनात्मक ढाँचे ने हिंदी सिनेमा की 'म्यूजिकल-ड्रामा' परंपरा को जन्म दिया। फिल्मी सितारों ने सार्वजनिक पहचान और प्रतीकात्मक नेतृत्व का काम किया। वे फैशन, बोलचाल और सामाजिक आकांक्षाओं के मॉडल बने। स्टार-इमेज का जन-संस्कृति पर दीर्घकालिक प्रभाव है, वे न केवल मनोरंजन देते हैं बल्कि सामाजिक आदर्शों और नैतिक विमर्शों को भी आकार देते हैं। भारतीय लोकप्रिय फिल्में समानांतर रूप से नुकसानदेह रूढ़ियों को प्रतिबिंबित भी करती हैं और चुनौती भी देती हैं। फिल्में सामाजिक विमर्शों का एक प्लेटफ़ॉर्म बन चुकी हैं। जैसे रंग दे बसंती, स्वदेश, चक दे! इंडिया, तारे ज़मीन पर आदि ने नागरिकता, लैंगिकता, शिक्षा और न्याय पर सार्वजनिक बहसें उत्पन्न कीं। लोकप्रिय फिल्में सार्वजनिक मनोवृत्ति और नीति-वार्ता को प्रभावित कर सकती हैं। 1990 के बाद आर्थिक उदारीकरण और ग्लोबल मीडिया के प्रभाव से भारतीय सिनेमा में कॉरपोरेटीकरण, ब्रांडिंग, और वैश्विक मिश्रण की प्रवृत्तियाँ आईं। बॉलीवुड की दृश्य भाषा का व्यापक सामाजिक और व्यापारिक विस्तार जो अन्य जन-दृश्यों पर भी दिखाई देता है।

KEYWORDS:

सिनेमा, नाटक, जनसंस्कृति, प्रतिनिधित्व, दर्शक, दृष्टि, लोकनाट्य, बॉलीवुड, सामूहिक कल्पना।

भारतीय फीचर सिनेमा की शुरुआत धार्मिक और मिथकीय कथाओं से मानी जाती है। पारसी थिएटर ने आधुनिक भारतीय थियेटर और फिल्म-कथानक के कई तत्व दिए। सिनेमा और रंगमंच भारतीय जन-संस्कृति के दो अभिन्न और पारस्परिक प्रभावी घटक हैं; वे परस्पर से उपजी शैलियों, प्रतीकों और दर्शक-प्रथाओं द्वारा जन-धारणा को प्रभावित करते हैं। क्षेत्रीय सिनेमा और लोक-नाट्य के अध्ययन से राष्ट्रीय जन-संस्कृति की बहुरूपता अधिक स्पष्ट होती है। इन फिल्मों ने यथार्थवादी होने के साथ ही समाज को एक ताकतवर संदेश देने में भी सक्षम भूमिका निभाने का काम किया। आज डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म्स (OTT) ने न केवल वितरित सामग्री के स्वरूप बदले हैं, बल्कि दर्शकों की सक्रियता, री-मिक्स संस्कृति और फैन-अनुभव को बदल दिया है। वर्ग, भाषा और आयु-समूह के आधार पर सामग्री की खपत और अर्थनिर्माण अलग हुआ है। यह सार्वजनिक संस्कृति के भीतर नैरेटिव बहुलता बढ़ाता है।

सिनेमा किसी खास वर्ग या समाज तक सीमित न रहकर बल्कि वह संपूर्ण सामाजिक समस्या, पिछड़ापन, गरीबी, पारिवारिक घुटन, स्त्री शोषण, जातिवादिता, संघर्ष, तनाव, दबाव... को पूरी ताकत के साथ परदे पर लेकर आ रहा था। नब्बे के दशक तक अर्थपूर्ण एवं यथार्थवादी सिनेमा काफी सशक्त हुआ। भारतीय सिनेमा में सोच और रचनात्मकता ने एक सार्थक ऊंचाई और अर्थवत्ता प्राप्त की। सिनेमा समाज की सोच और मानसिकता को भी प्रभावित करने का काम कर रहा है। सिनेमा समाज की सोच को अपने चित्रों, कथाओं और कहानियों के माध्यम से गहराई से बदलने की क्षमता रखता है। जो हकीकत नहीं है उसको भी हकीकत की तरह से पेश कर रहा है। जनता की संस्कृति में निपुणता प्राप्त कर, उसके जीवन के साथ घुल-मिलकर ही हम महान कलाकार बन सकते हैं।

सिनेमा समाज का एक शक्तिशाली दर्पण है जो हमारे मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है, साथ ही यह हमारी पारंपरिक मान्यताओं को चुनौती भी देता है और हमारे सोचने और महसूस करने के तरीके को भी दिशा देता है। सिनेमा को सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक प्रेरक माध्यम के रूप में विकसित होना चाहिए, जो समावेशिता, विविधता और संवेदनशीलता को बढ़ावा दे, साथ ही जनभावनाओं का सम्मान करते हुए संवैधानिक और सामाजिक नैतिकता का पालन करे।

नाटकों के उल्लेखनीय रूपांतरणों और मंच के चिरस्थायी विषयों

ने आधुनिक सिनेमा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिनेमा ऐसा कला-रूप है जहाँ साहित्य, संगीत, अभिनय, नृत्य जैसे क्लासिक कला-रूपों के साथ ही फ़ोटोग्राफी, एनीमेशन, डिजिटल एडिटिंग, ग्राफ़िक्स जैसे अन्य आधुनिक कला-रूप प्रतिबिंबित होते हैं। आधुनिक समाज और सिनेमा का अनन्य संबंध देखा जाता है, जहाँ दोनों एक-दूसरे की प्रवृत्तियों का अनुकरण करते नज़र आते हैं। सिनेमा का उपयोग विभिन्न समाजों के मूल्यों, विश्वासों और अनुभवों को दर्शाने के लिए सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में किया जाता रहा है।

फिल्म निर्माताओं ने परिवार, प्रेम और धर्म जैसे सांस्कृतिक विषयों को उजागर करने के लिए सिनेमा का उपयोग किया है। सिनेमा का उपयोग समाज में महिलाओं के चित्रण जैसे सांस्कृतिक मानदंडों को चुनौती देने के लिए भी किया गया है। सिनेमा ने संस्कृति और समाज को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिनेमा के इस विकास के बारे में डॉ. महेंद्र मित्तल लिखते हैं कि "भले ही किन्हीं पूर्वाग्रहों के कारण अथवा साहित्य शास्त्र की बंधी हुई परिपाटी के कारण चित्रपट को किसी साहित्यिक विधा अथवा कला का स्तर प्रदान न किया गया हो, किंतु आज इस तथ्य से विमुख नहीं हुआ जा सकता कि सामाजिक क्षेत्र में सिनेमा ने अपना एक निजी सांस्कृतिक परिवेश धारण कर लिया है और इसी परिवेश में साहित्य एवं कला के विभिन्न अलंकारों की जगमगाहट लक्षित की जा सकती है।"[1]

सिनेमा हमारी संस्कृति का हिस्सा है जो हमारे जन-जीवन को अगर कोई कला व्यापक स्तर पर प्रभावित कर पायी तो वो सिनेमा है। सिनेमा के आरंभ से ही व्यावसायिक और अव्यावसायिक फिल्में बनती रही हैं। उन्हीं फिल्मों को दर्शकों और आलोचकों ने याद रखा जिन्होंने हमारी सांस्कृतिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया। सिनेमा सिर्फ आनंद नहीं विचार भी है और सवाल यह है कि आप देखने के लिए किस तरह की फिल्में चुनते हैं। सिनेमा समाज को वैचारिक रूप से मजबूती भी प्रदान करता है। सबसे लोकप्रिय कला माध्यम के रूप में हम सिनेमा को देखते हैं। फिल्में समाज और समय का जीवंत दस्तावेज़ होती हैं। चरित्र प्रधान या किसी घटना पर बनी फिल्मों का निर्माण सामाजिक बदलाव की पूर्ति के उद्देश्य से किया जाता है।

"सिनेमा ने सामाजिक यथार्थ को खूबसूरती से प्रस्तुत किया है। सिनेमा को केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं किया जा सकता बल्कि सिनेमा समाज को गहराई तक प्रभावित भी करता है और खुद प्रभावित

भी होता है। कला मनुष्य की सृजनात्मकता की परिचायक है। मनुष्य ने कभी अपनी अभिव्यक्ति तो कभी मनोरंजन के लिए अनेक कलाओं का निर्माण किया। अन्य कलाओं में सिनेमा सबसे लोकतांत्रिक है और हर वर्ग तक आसानी से पहुँचने में सक्षम भी है।"[2]

भारतीय सिनेमा देश की सांस्कृतिक धारा और सामाजिक चेतना को प्रभावित करता है। इसे भारतीय मनोरंजन जगत की आत्मा कहा जाता है। आज बॉलीवुड केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि जनमानस की सोच और जीवनशैली को दिशा देने वाला एक सशक्त तंत्र बन चुका है। परंतु जब यह दिशा विकृति, विघटन या सांस्कृतिक अपमान की ओर मुड़ने लगे, तो इस पर मंथन और प्रतिप्रश्न करना आवश्यक हो जाता है।

भारतीय सिनेमा न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि यह सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक बदलावों का आईना भी रहा है। इसके माध्यम से भारत ने जनता की भावनाएँ, संघर्ष और सपनों को रूप दिया। कुछ पारंपरिक और रूढ़िवादी के पोषक फिल्म निर्माताओं ने हिंदी फिल्मों में बार-बार कुछ ऐसे विचार और दृश्य परोसे हैं जो न केवल भारतीय संस्कृति की प्रगति के लिए गलत तथ्यों को पेश किया है जिससे युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित भी करते हैं। इसको बारीकी से पहचानने की ज़रूरत है। भारतीय सिनेमा का विकास सिर्फ तकनीकी नहीं, यह सांस्कृतिक जागरण, सामाजिक चेतना और जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति की यात्रा है। जहाँ शब्द कम पड़ जाते हैं, वहाँ सिनेमा बोलता है और भारत का सिनेमा तो आत्मा की भाषा है।

सिनेमा और रंगमंच (नाटक) जनसंस्कृति के परिप्रेक्ष्य में हैं। सिनेमा और नाटक केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं बल्कि वे सामाजिक कल्पना, पहचान निर्माण, राजनीति और सामुदायिक संवेदनाओं के निर्माण-विकास में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। सिनेमा और रंगमंच रोज़मर्रा के जीवन के साथ गहराई से जुड़े हैं। वे सामान्य भाषा, संस्कार, और कल्पनाओं का स्रोत बनते हैं। संस्कृति का सम्बन्ध सामान्य जीवन और सामूहिक अनुभवों से भी है। यही वह धरातल है जहाँ जनसंस्कृति का अध्ययन आवश्यक होता है। सिनेमा की संरचना कहानी, स्टार-इमेज, संगीत-दृश्य, और उद्योग मिलकर एक सांस्कृतिक उत्पाद बनाते हैं। जनसंस्कृति के रूप में फिल्में लोकप्रिय फिल्मों में नैरेटिव्स और शैलियाँ सामाजिक मूल्यों, परिवार संरचना व राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय पहचान के विकल्प दर्शाती हैं।

भारत में जन नाट्य मंच, बादल सरकार, सफ़दर हाशमी जैसे कलाकारों ने निःशुल्क सार्वजनिक मंचों पर नाटक करके राजनीतिक चेतना और समाज-सुधार के अभियान चलाये। स्ट्रीट-थिएटर ने आपात संदेश को पहुँचाने, साक्षरता, स्वास्थ्य, क़ानूनी अधिकारों पर जागरूकता फैलाने और प्रतिरोधी राजनीति के लिए महत्वपूर्ण स्थान बनाया। भारत में सिनेमा का व्यापक प्रसार और रंगमंच के लोकरूप मिलकर एक जटिल जनसंस्कृति बनाते हैं। श्रमिक-अधिकार व राजनीतिक चेतना के मंचन का उदाहरण स्ट्रीट-थिएटर की पहुँच और प्रतिरोधी क्षमता दिखाती है।

नाटक साहित्य की प्राचीनतम विधा है। दुनिया भर की सभ्य संस्कृतियों में सबसे प्राचीन साहित्यिक विधा के रूप में नाटक मौजूद है। "नाटक शब्द 'नट्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है अभिनय। 'नाटक' साहित्य की वह विधा है जिसका परीक्षण रंगमंच पर होता है और रंगमंच युग विशेष की जनरुचि और तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के आधार पर निर्मित होता है। नाटक का स्वरूप प्रत्येक युग में परिवर्तित होता रहता है। स्वरूप के बदलने से उसके लक्षण भी बदलते रहते हैं किंतु नाटक के मूल तत्त्व बने रहते हैं।"[3]

संस्कृति की महत्ता क्या होती है इसको बताते हुए डॉ दिनेश्वर प्रसाद लिखते है "संस्कृति सामाजिक मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। इसी साधन के द्वारा वह परिवेश के साथ अपना समायोजन करता है। उसके द्वारा अपनी संस्कृति को अर्जित करने की-संस्कृतीकरण की यह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। लेकिन जीवन के आरम्भ से ही अपने को संस्कृति विशेष में पाने के कारण यह शायद ही इसे अपने ऊपर आरोपित अनुभव करता है। पूर्व प्रदत्त होने के कारण यह सहज हो जाती है। इसका चेतन धरातल पर अनुभव तभी होता है, जब मनुष्य अपने से भिन्न संस्कृति के सम्पर्क में आता है।"[4]

गोरख पांडेय शहरी संस्कृति और गांवों की संस्कृति के अंतर को बताते हुए कहते है कि कैसे अमीरों और गरीबों की संस्कृति और मनोरंजन अलग अलग है। वे कहते हैं – "शहर में सुखी-संपन्न लोगों का एक ऐसा तबका अस्तित्व में है, जो भरतनाट्यम को भारतीय संस्कृति मानता है और उसके साथ डिस्को जोड़कर भारतीय संस्कृति का पूरा और आधुनिक रूप बनाने में लगा हुआ है। लेकिन, देहात में रहने वाले विशाल किसान समुदाय के लिए, या फिर शहरी मध्यवर्ग और गरीब लोगों के लिए भरतनाट्यम और डिस्को का मौजूदा रूप उनकी संस्कृति या उनके देश की अपनी संस्कृति का पर्याय नहीं बन सकता।"[5] जिसके कारण को

स्पष्टता से हम देख और पहचान कर सकते है गोरख आगे लिखते हैं - गांवों के गरीब अब भी नाच, तमाशा, बिरहा, आल्हा, कजरी और फाग में अपनापन महसूस करते हैं। भरतनाट्यम और डिस्को आर्थिक सामाजिक लिहाज से उनकी पहुंच के बाहर हैं। अब टी.वी. के जरिए उनका प्रचार बढ़ाने की कोशिश जरूर की जा रही है, लेकिन जो संस्कृति सिर्फ टी.वी. के जरिए लोगों तक पहुंच रही हो, वह उनके बीच अपनापन के बजाए अलगाव की भावना ही पैदा करेगी। कोई भी समुदाय जिस संस्कृति को खुद न (पैदा) करता हो उसे अपनी संस्कृति नहीं मान सकता।"[6] जिस चीज को समझने की जरूरत है।

गोरख पाण्डेय जन संस्कृति क्या होता है उसके बारे में लिखते हैं "कलारूपों और विचारों के क्षेत्र से जुड़े इन दो उदाहरणों को देखने से ही साफ हो जाता है कि भारत के शासक वर्ग की संस्कृति यहां की जनता की संस्कृति से भिन्न है और उसकी संस्कृति के विरोध में खड़ी है।"[7] हम समाज में देखते है और मार्क्स ने दुनिया में मनुष्यों को दो वर्गों में बांटते हैं जिसमें एक अमीर वर्ग है और दूसरा गरीब वर्ग है। दोनों के रहन सहन में साफ भिन्नता को देखा जा सकता है और दोनों के मनोरंजन में भी भिन्नता है यानि दोनों एक दूसरे के विरोधी जैसा ही है। गोरख आगे लिखते हैं- "संस्कृति की दो परस्पर विरोधी धाराएं हैं, जिनमें शासक वर्ग की सांस्कृतिक धारा के विरोध में जनता की सांस्कृतिक धारा दबाव और दमन की स्थितियों में विकसित हो रही है। अब हम शासक वर्ग की संस्कृति के वर्तमान स्वरूप पर जरा गौर करें, ताकि जन संस्कृति के मौजूदा स्वरूप को और स्पष्टता से देखने में मदद मिल सके।"[8]

जन संस्कृति और शासक संस्कृति के अंतर को बताते हुए गोरख पांडेय लिखते हैं "जन संस्कृति, शासक वर्ग की इस उग्र परंपरावादी और अंध आधुनिकतावादी संस्कृति के विरोध में जो संस्कृति हमारे देश में उभर रही है वह जनता की संस्कृति है। यह विशाल किसान समुदाय, मजदूर वर्ग और शहरी मध्यवर्ग बुद्धिजीवी समुदाय और अन्य उत्पीड़ित सामाजिक तबकों के हितों और हकों का वहन करने वाली, उनके विचारों और मूल्यों के कई स्तरों को आत्मसात कर एक विशाल सांस्कृतिक धारा का रूप लेने की दिशा में बढ़ती संस्कृति है। जाहिर है, कि जन संस्कृति अपने वर्तमान स्वरूप में लोक संस्कृति से भिन्न है, क्योंकि लोक संस्कृति अपने प्रचलित रूप में जनता के बीच जमाने से चले आ रहे विचारों और कलारूपों की व्यवस्था है, जिसमें, आधुनिक जीवन के आशय को पूरी तरह से वहन करने की क्षमता नहीं है।"

समाज में जन संस्कृति के चुनौतियां भी है जो विद्वान और आलोचक जो परंपरागत है वह उसे ही आगे बढ़ाने की कोशिश में लगे रहते हैं। यह लोग चाहते हैं कि यह संस्कृति व्यापकता के साथ सभी मानवों के पास नहीं पहुंचे इसे अपने ही दायरे में बांधकर कर रखना चाहते हैं। इसी चुनौती के बारे में गोरख पांडेय लिखते हैं "हममें अभी तक जन संस्कृति की विचारधारा की व्यापकता का पूरा अहसास नहीं रहा है। हमारे बीच अब भी पुराने ढंग से सोचने का रुझान बना हुआ है, जो कहीं-कहीं संस्कृति को राजनीति का स्थानापन्न मानने और ऐसा न करने वालों को एकदम गलत मान लेने जैसे रुख में जाहिर होता है। हमारे बीच एक रुझान यह भी है, कि चूंकि 'मंच' राजनीतिक संगठन का अंग नहीं है इसलिए इसे हर राजनीतिक संगठन से हमेशा दूर रहना चाहिए। यानी, हमारे बीच संस्कृति को राजनीति का स्थानापन्न या अनुवाद बनाने तथा संस्कृति को राजनीति से दूर करने के दो अतिवादी रुझान मौजूद हैं।"[9]

निष्कर्ष

सिनेमा, नाटक और जन-संस्कृति आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं। प्राचीन संस्कृत नाटकों और लोक-कथाओं से प्रेरित होकर, भारतीय सिनेमा ने मनोरंजन के साथ सामाजिक मुद्दों को उठाया है, जबकि नाटक सांस्कृतिक विविधता को दर्शाते हैं, जो मिलकर भारत की पहचान और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देते हैं। सिनेमा एक शक्तिशाली जन-संचार माध्यम है जो वैश्विक स्तर पर भारत की छवि बनाता है और संस्कृति का दर्पण व वाहक है, जबकि पारंपरिक रंगमंच ग्रामीण-शहरी जीवन और स्थानीय परंपराओं को जीवंत रखता है। भारतीय सिनेमा और नाटक कला के शक्तिशाली माध्यम हैं जो प्राचीन परंपराओं को आधुनिक समाज से जोड़ते हैं। सिनेमा और नाटक जनसंस्कृति के केंद्र में खड़े हैं। वे न केवल सामाजिक मान्यताओं का प्रतिबिंब हैं, बल्कि उन्हें बनाने, चुनौती देने और पुनःनिरूपित करने के सक्रिय साधन भी हैं।

संदर्भ सूची:

1. भारतीय चलचित्र, डॉ. महेंद्र मिश्र, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2020, पृष्ठ 2
2. https://hi.wikibooks.org/wiki/हिंदी_सिनेमा_एक_अध्ययन/कला_विधा_के_रूप_में_सिनेमा_और_उसकी_सैद्धांतिकी, 18.12.25, 10:36
3. डॉ अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2021, पृष्ठ 202
4. लोक साहित्य और संस्कृति, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018 पृष्ठ 98
5. गोरख पांडेय, संकलित गद्य रचनाएं, सं गोपाल प्रधान, सांस्कृतिक संकुल, इलाहाबाद, 2018, पृष्ठ 85, वही 85
6. वही 86
7. वही 86
8. वही 87
9. वही 91